महादेवी संस्मरण ग्रन्थ

संपादक

सुमित्रानंदन पंत शांति जोशी

लोकभारती प्रकाशन

१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

श्री महादेवी जी को
षष्टि-प्रवेश के शुभ अवसर पर
सविनय समर्पित

पूछो न प्रात की बात आज
आँधी की राह चलो ।

[illegible] इसने फिर रात रचा क्या [illegible] चितवन में ?
[illegible] छवि [illegible] हुई [illegible] के [illegible] ।
[illegible] के [illegible] को
[illegible] आज चलो ।

[illegible] का, [illegible] ,
[illegible] के [illegible] ।
ले [illegible]
[illegible] में [illegible] ।

तुमने लेकर [illegible]-भार क्या अपने सौंपे ?
[illegible] आँधी [illegible] से [illegible] ।
[illegible]
[illegible] पर [illegible] ।

[illegible] आँधी ,
[illegible] देखी नहीं [illegible] की [illegible] ।
[illegible], आज
[illegible] में आज चलो ।
आज आँधी के साथ चलो ।

— महादेवी

विज्ञप्ति

श्रीमती महादेवी वर्मा २६ माच '६७ को साठवें वष मे प्रवेश कर रही हैं। इस उपलक्ष मे, साहित्यिक परिवार की अनत मगल-कामनाओ का प्रतीक, यह सस्मरण ग्रथ उन्हे समर्पित है। मैं उन साहित्यिक बधुओ एव लेखक-लेखिकाओ का अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होने अपने स्नेह और सद्भाव द्वारा इस ग्रथ की श्रीवद्धि की है।

१८/बी-७ कस्तूरबा गाधी माग
इलाहाबाद-२

—सुमित्रानदन पत

इस ग्रंथ के पारिश्रमिक की राशि
प्रयाग विश्वविद्यालय के निर्धन छात्रों के कोष के लिये
निर्धारित कर दी गई है। —स०

अनुक्रम

प्रथम भाग जीवनी

द्वितीय भाग स्मृति-चित्र

तृतीय भाग व्यक्तित्व

चतुर्थ भाग काव्य

पंचम भाग चित्रकला



चित्र-क्रम



पंचम भाग चित्रकला



चित्र-क्रम



प्रथम भाग : जीवनी



बचपन के दिन

श्रीमती श्यामा देवी सक्सेना

परिवार में सात पीढ़ियों से केवल एक-एक ही लड़का जन्म ले रहा था। जब जिज्जी (महादेवी) हुईं तो दादी ने दादा से कहा लड़की—भवानी हुई है। दादा सुनकर प्रसन्न हो गए कि उनके एकमात्र पुत्र के प्रथम संतान लड़की हुई है। दादी से कहने लगे—मेरे बड़े भाग हैं। यह देवी है, मेरे घर की महादेवी! दादा की आंतरिक प्रसन्नता अनंत थी—कन्यादान की मन में कितनी आकांक्षा थी—कन्यादान महादान! इस पुण्य से वंचित उनके मन का कोना उदास था।

बाबूजी बहुत सुंदर, सौम्य, विद्वान और हँसमुख थे। जीवन उन्होंने रियासतों में ही बिताया, इंदौर और नरसिंहगढ़ की रियासतों में। पहले वे डेली कॉलेज, इंदौर में अध्यापन कार्य करते थे। तब वहाँ केवल राजकुमार पढ़ते थे। नरसिंहगढ़ के राजकुमार बाबूजी के शिष्य थे। बाबूजी का वे बहुत आदर करते थे। जब वे नरसिंहगढ़ की राजगद्दी पर बैठे तो उन्होंने बाबूजी से नरसिंहगढ़ आने का आग्रह किया। बाबूजी ने इंदौर-कॉलेज की सरकारी नौकरी छोड़ दी, यद्यपि यह नौकरी अच्छी थी, पेंशन वाली थी।

नरसिंहगढ़ और इंदौर, इन दोनों ही जगहों में गोश्त नहीं खाया जाता था। किंतु बाबूजी गोश्त के प्रेमी थे। वे गोश्त खाते तो थे ही, राजा साहब के साथ शिकार के लिए भी जाते थे। माँ गोश्त नहीं खाती थीं, उन्हें परहेज भी था। अतः गोश्त, बाबूजी के ही आदमी से, घर के बाहर, अहाते की एक कोठरी में, पकता था। गोश्त पकाने और खाने के बर्तन अलग थे—थाली, कटोरा, पतीली। बाहर के ही कमरे में बाबूजी खाना खाते थे। माँ अपनी रसोई से खाना भिजवा देती थीं। वे बहुत बढ़िया खाना बनाती थीं—बाबूजी को उनके बनाए खाने में रस मिलता था। वे बड़ी-बैंगन के भी बड़े प्रेमी थे। अक्सर चौके में आकर खाना खा जाते। घर के अंदर फूल की थालियों का ही प्रयोग होता था। बाहर की रसोई तब बाहर के कमरे में प्याला-प्लेट, छुरी-काँटे का प्रयोग वर्जित नहीं था। माँ को गोश्त से परहेज अवश्य था, किंतु पिताजी अथवा भाइयों के खाने से उन्हें कभी कोई आपत्ति नहीं हुई। एक बार किसी ने मछली या गोश्त भेजा। नौकर ने उसे घर के अंदर ही रख लिया। जिज्जी ने देखा तो उन्हें घिन आ गई। माँ ने डाँटते हुए समझाया—जिस चीज को बाप-भाई खाते हैं उससे तुम घिन करोगी तो उन्हें हजम कैसे होगा?

माँ-बाबूजी दोनों का ही स्वभाव [illegible]-सा था, किसी भी बात में तब

दूसरे से साम्य नहीं, किंतु फिर भी एक-दूसरे की भावनाओं का इतना अधिक ध्यान रखते थे कि गार्हस्थ्य जीवन सुखी और सफल था। बाबूजी सुन्दर, खूब गोरे, माँ दीखने में साँवली, मामूली। माँ आस्थावान्, पिता, नास्तिक। माँ का संपूर्ण समय पूजा पाठ व्रत नियम आदि में बीतता था, वे धर्मपरायण थीं कर्मठ जीवन में विश्वास था। बाबूजी पढ़ने, शिकार खेलने घूमने के शौकीन थे, अच्छा भोजन और आराम से रहने में उनका विश्वास था। बाबूजी भाषण बहुत अच्छा देते थे। नरसिंहगढ़ में जब कभी सांस्कृतिक या धार्मिक आयोजन होते तो संयोजक उनसे भाषण देने की प्रार्थना अवश्य करते। ईसाई, आर्यसमाजी या सनातन धर्मी किसी भी प्रकार का आयोजन हो, उन्हें बोलने के लिए आमन्त्रित किया जाता और वे आमंत्रण को स्वीकार करते। बाबूजी पूजा पाठ में विश्वास नहीं करते थे, किन्तु उनका सिद्धान्त था कि दूसरे के विश्वास को चोट नहीं पहुँचानी चाहिए। माँ की आस्था तथा इच्छा का आदर करते हुए उन्होंने घर में मंदिर बनवाया और मथुरा से रामचन्द्रजी सीताजी तथा लक्ष्मणजी की संगमरमर की मूर्तियाँ मँगाकर स्थापित कीं। माँ तीन घण्टे नियमित रूप से भगवान की पूजा करती थीं। सस्ता समय था। नौकर चाकर रियासत से मिलते थे। माँ को पूजा करने के लिए पर्याप्त अवकाश मिल जाता था। किंतु कई पूजाएँ ऐसी भी होतीं जिनमें पति एवं गृहस्वामी की स्थिति अनिवार्य मानी जाती है। माँ बाबूजी से पहले दिन ही कह देतीं कि कल आपको पूजा करनी है तथा विशिष्ट विधियों का पालन करना है। बाबूजी उनकी बात मानते हुए कहते—अच्छा सबेरे पानी गरम करवा देना। बाबूजी को गठिया का रोग था अतः नित्य या सबेरे नहाना वे पसंद नहीं करते थे। प्रति मास सत्यनारायण की कथा तथा उन पूजाओं में जिनके लिए माँ कहतीं वे विधिवत बैठते, जो कुछ भी कहतीं वह करते और फिर हँसते हुए हम लोगों के पास आ जाते। उस समय वे ईसाई मिशनरियों के हिन्दू धर्म विरोधी वाक्यों को दुहरा देते—

> माला लक्कड़, देवा पत्थर गंगा-जमुना पानी।
> रामा, कृष्णा मरते देखे, सारा वेद कहानी॥

एक बार बाबूजी गंभीर रूप से बीमार पड़े। उनकी मरणासन्न स्थिति देख डाक्टरों ने उनसे कहा—राम राम कहिए। पर वे कहने लगे—मैं भगवान् का नाम नहीं लूँगा, यह धूर्त देता है। एक-दो-तीन कहूँगा।

माँ की स्मरणशक्ति बहुत अच्छी थी। रामायण, महाभारत, गीता आदि के कई अंश उन्हें याद थे। विनयपत्रिका तो कंठस्थ थी। तुलसीदास जी की वे भक्त थीं। रामचन्द्रजी उनके इष्टदेव थे। चैत्र में रामजन्म के अवसर पर नौ दिनों तक रामायण का पाठ इस भाँति करतीं कि रामनवमी के दिन पाठ पूर्ण हो जाता—फिर धूमधाम के साथ रामायण और रामचन्द्रजी की आरती होती और प्रसाद बँटता। जब हम दोनों (जिज्जा और मैं) इस योग्य हो गए कि रामायण ठीक से पढ़ लें तो रामायण का पाठ करना हम दोनों का

काम हो गया। हम दोनों क्रम से पढ़ते—एक उठता तो दूसरा बैठता। माँ अन्य देवी देवताओं, कृष्ण आदि से संबंधित धार्मिक ग्रंथ भी श्रद्धा से पढ़तीं। बाबूजी धार्मिक पुस्तकें इधर उधर से मँगा कर उन्हें देते और छोटा भाई उनके लिए रेकॉर्ड ला देता।

माँ सवेरे चार बजे उठ जातीं। स्नान आदि से निवृत्त हो पूजागृह में चली जातीं और पूजा पूरी होने पर घर का काम देखतीं। लोहे का एक बड़ा-सा स्प्रिंगदार पलँग था। बाबूजी उस पलँग पर हम बच्चों के साथ सोते थे—माँ केवल सबसे छोटे बच्चे को ही अपने साथ सुलाती थीं। वैसे बूढ़ी नौकरानी लछिमा की माँ हम बच्चों की देखभाल करती थी। सवेरे रामा नौकर स्टोव जलाकर चाय बनाता। सब बच्चों को पिताजी चाय और दो दो टुकड़े पापड़ बिस्कुट देते। चाय पीने के बाद हमलोग बिस्तर छोड़ते। माँ को यह पसंद नहीं था कि बच्चों को सवेरे उठते ही चाय दे दी जाए। वे बाबूजी से कहतीं कि जब बच्चे कुल्ला-दातुन कर लें तब उन्हें कुछ खाने को दीजिए। बाबूजी हँस देते—शेर कुल्ला-दातुन करता है? मेरे बच्चे शेर हैं।

हम दो बहनें बड़ी थीं, उनके बाद दो भाई। बहनों में लड़ाई कभी नहीं हुई। होती भी कैसे! जिज्जी का शांत, गंभीर स्वभाव। बड़े भाई का भी वैसा ही स्वभाव। लड़ाई मुझमें और छोटे भाई में होती थी। दोनों ही चंचल नटखट। छोटा हठी और अपने मन का है। एक बार पिताजी ने हम चारों के लिए चार आसन बनवाए। जब जेल से आसन बन कर आए तो पिताजी ने कहा कि पहले महादेवी को अपनी रुचि का आसन चुनने दो। जिज्जी ने एक आसन—सबसे अधिक कलात्मक आसन—चुन लिया। मुझे और बड़े भाई को इसमें कोई आपत्ति नहीं हुई। पर छोटा भाई बिगड़ गया—नहीं मैं तो जिज्जी वाला आसन ही लूँगा। किंतु बाबूजी ने उसे वह आसन देना अस्वीकार कर दिया। उनका कहना था कि यह विशेष आसन मैंने महादेवी की रुचि का ध्यान में रख कर बनवाया है। छोटा भाई उस समय तो लड़ झगड़ कर चुप हो गया पर उसने मन ही मन उस आसन को प्राप्त कर लेने का निश्चय कर लिया। जिज्जी को चीनी और शक्कर से घिन थी। बिना चम्मच के वे इन्हें छूती नहीं थीं। छोटे भाई ने आसन पर एक मुट्ठी चीनी डाल दी और उसे प्राप्त कर लिया।

हम चारों भाई-बहन रामा नौकर के साथ अक्सर पहाड़ पर घूमने जाते। रामा हम लोगों को बहुत प्यार करता, किंतु साथ ही डाँटता, चिढ़ाता और बेहद तंग करता। बरसात के दिन थे। हम लोग पहाड़ पर चढ़ रहे थे। दो चट्टानों के बीच एक सफेद फल दिखा। रामा बोला—यह कंद मूल फल है। इसे ही ऋषि मुनि खाते थे। हम लोगों ने जब उसकी बड़ी चिरौरी की तब वह उस फल को तोड़ने के लिए तैयार हुआ। वह फल तोड़ना साहस और चतुराई का काम था। दो चट्टानों के बीच खाई, जरा पैर फिसले तो पता भी न चले। किसी तरह पेट के बल खिसकते हुए रामा ने वह फल तोड़ा, झरने के पानी से धोया और सबको बाँटा। खाने में वह फल मीठा था। किंतु खाते ही दर

में जीभ में चिरोंजी काटने की अनुभूति और लार का टपकना! किसी तरह हम लोग घर पहुँचे। सबका मुँह इतना अधिक सूज गया था कि बोलना असंभव हो गया। पिताजी ने देखा। तत्काल सिविल सर्जन को बुलाया, इलाज हुआ। चार दिन तक कोई बिस्तर नहीं छोड़ पाया। पिताजी ने जब सब किस्सा सुना तो रामा को बहुत डाँटा। पर वे उसे प्यार भी बेहद करते थे। उसकी ईमानदारी के प्रशंसक थे।

माँ और पिताजी दोनों को ही गाने का बड़ा शौक था। उस समय परदा बहुत था। पिताजी मास्टर रख कर माँ को गाना नहीं सिखा सकते थे। अतः उन्होंने अपने लिए मास्टर रखा और हारमोनियम पर गाना सीखने लगे। माँ परदे के अंदर से गाना सुनतीं एवं सीखतीं। मास्टर साहब के चले जाने पर वे हारमोनियम पर उनका सिखाया हुआ भजन सुना देतीं। साल भर के अंदर ही वे सब स्वर निकालने लगीं, सभी राग रागिनियाँ हारमोनियम पर उतारने लगीं। वे ढेरों गाने सीख गईं। सबेरे चार बजे माँ प्रभाती अवश्य गातीं। 'तू दयाल दीन हूँ' और 'नमामी नमी श्याम' उनके प्रिय भजन थे। माँ इतनी सुन्दर लय में गातीं कि पिताजी भाव विभोर हो जाते। जिज्जी के कुछ गीतों में संस्कार एवं वातावरणवश माँ के गीतों की लय मिलती है। उनके 'हुए फूल चंदन' गीत में 'नमामी नमी श्याम' का ही छंद है। एक बार माँ होली में गा रही थीं—'लाल भयो नंदलाल, श्यामता रंग गयो है'। आगे की पंक्तियाँ वे भूल गईं। अपनी बड़ी बेटी से उन्होंने कहा तो बेटी ने पंक्तियाँ बनाकर जोड़ दीं—

लाल मुकुट सिर लाल पीताम्बर, लाल गले बनमाल।
राधे लाल, भयी सब लाली सुंदर नैन विशाल।

जिज्जी ने ऐसे ही चार अंतरे बनाए। फिर माँ जब कभी बारहमासी, होली, लोकगीत आदि जिनकी माँ पंक्तियाँ भूल जातीं—जिज्जी से कहतीं और वे बना देतीं। जिज्जी का कविता लिखना इसी भाँति प्रारंभ हुआ।

बाबूजी का परिवार-केन्द्रित स्वभाव! बाहर जाना वे परिवार के साथ ही अच्छा मानते थे। राजा साहब के यहाँ या काम से कहीं जाना हुआ तो बात दूसरी है अन्यथा वे माँ या हम लोगों के साथ ही बाहर निकलते थे। वे अपना अधिकांश समय घर में ही बिताते थे। हम लोगों के साथ बैठ कर हँसी मजाक करना उन्हें प्रिय था। दावतों में भी, यदि उन्हें आमंत्रित किया जाता तो वे नहीं जाते। नरसिंहगढ़ की औरतें परदा करती थीं, माँ स्वयं भी परदा करती थीं, अतः बाबूजी हम बच्चों को ही घुमाने ले जाते। हम लोग देहातों में जाते, कभी बग्घी में, कभी हाथी पर और कभी पैदल ही। बाबूजी को थिएटर देखने का बड़ा शौक था। इंदौर, नरसिंहगढ़ दोनों ही जगह थिएटर कम्पनियाँ आती थीं। बाबूजी हम बच्चों के साथ थिएटर देखने जाते—लैला-मजनू, शीरीं फरहाद, गुले-हव। एक बार माँ को भी आग्रहपूर्वक ले गए। थिएटर देखने के बाद वे बड़ी दुखी हुईं—भक्ति और

म के थिएटर देखने चाहिए और तुम दुश्मनों के देखते हो, बच्चों को भी दिखाते हो। मेरी बार पिताजी उन्हें सूरदास दिखाने ले गए। वे बड़ी प्रसन्न हुईं—भक्ति भाव में डूब ईं। फिर पिताजी धार्मिक थिएटरों को देखने ही जाने लगे। शनिश्चर की शाम हम व लोग मीरा, सत्य हरिश्चन्द्र, भक्त प्रह्लाद आदि थिएटर देखने जाते।

बाबूजी लड़कियों की शिक्षा को आवश्यक मानते थे। जब हम लोग बड़े हुए तो उन्होंने कहा कि मेरे बच्चे मध्य प्रदेश के जंगली इलाके में बिगड़ जाएँगे। उस समय स्त्री-शिक्षा के दो ही स्थल थे—इलाहाबाद में क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलेज, और जालन्धर में कन्या महाविद्यालय। पिताजी इनमें से किसी एक विद्यालय में भेजना चाहते थे किंतु माँ ने तीव्र विरोध किया—देखो, पढ़ाना-बढ़ाना पीछे, पहले मैं लड़कियों को घर का काम सिखा लूँ। बी० ए० करके गृहस्थी चलाना उन्हें नहीं आ सकता। बाबूजी को माँ के इस स्वर के आगे हार माननी पड़ी। फिर भी उन्होंने पूछा—प्रशिक्षण में कितना समय लगेगा? माँ ने उसी स्वर में कहा—जब सिखा लूँगी, बता दूँगी। और लड़कियों की शिक्षा प्रारंभ हुई आँगन की पुताई से। दो चमारिनें शिक्षक बन कर आईं। गोबर मिट्टी आँगन में डाली गई। जिज्जी ने सुंदर आँगन लीप कर दिखा दिया। फिर एक बोरा गेहूँ आया। माँ का आदेश था—फटकना सीखो, यदि सास ने कहा तो क्या करोगी। खैर गेहूँ फटकना भी सीख लिया। फिर खाना बनाने की शिक्षा माँ ने स्वयं दी। वे चिमटा लेकर पास ही बैठ जातीं। जरा सी भूल हो जाने पर चिमटा दिखाकर डाँटतीं। डाँट जिज्जी को ही सहनी पड़ती, बड़ी होने के कारण। कुशाग्र बुद्धि के कारण वे बहुत जल्दी सब काम सीख गईं। मैं तो कुछ भी ठीक से नहीं सीख पाई, किसी काम में गंभीरतापूर्वक मन लगता तब न! जिज्जी ने छोटी-सी आयु में बड़े, पकौड़ी, कढ़ी, पराठा, रोटी, तरकारी सब कुछ बनाना सीख लिया। उनकी सी रोटी बिरले ही बना पाते होंगे। उनकी नौ साल की आयु होगी तब छोटे भाई की छुट्टी में संपूर्ण खाना उन्होंने बनाया। माँ प्रसन्न और संतुष्ट हो गईं। दोनों लड़कियों को खेल-कूद और पढ़ने की स्वतंत्रता मिल गई। मैं तो किसी काम को कुशलतापूर्वक सीख नहीं पाई—माँ का पराजित मन जिज्जी के कामों की ओर ही अधिक ध्यान देता। और ये सब काम इतनी सहजता तथा दायित्व के साथ पूरा कर देतीं कि हम लोगों की प्रशंसा हो जाती। जिज्जी सफाई की प्रेमी हैं। उनके कामों, कपड़ों, कमरे एवं एक-एक बात में सफाई एवं स्वच्छता ही अभिव्यक्त होती। उनका अध्ययन प्रेमी स्वभाव अधिकतर उन्हें उनके कमरे में बाँध रखता जहाँ के शांत वातावरण में वे पढ़ती रहतीं।

हँसना हमारे परिवार का गुण है। हम सभी बहन भाई खिलखिलाकर हँस सकते हैं। यह गुण, शायद, हमें अपनी मौसी से मिला। हमारी एक ही तो मौसी हैं और उनका जीवन कष्ट का अथाह सागर रहा है। उस समय भी, जब कि असह्य दुःख के भार से कोई दूसरा होता तो बोल भी न पाता, वे अपनी बातचीत के जीवंत ढंग से सबको प्रसन्न कर देतीं और हँसी का झरना उनकी बात-बात में फूट पड़ता।

माँ की अनुमति मिलने पर बाबूजी ने संस्कृत पढ़ाने के लिए एक पण्डितजी रख दिए, साथ ही अंग्रेजी पढ़ाने के लिए मास्टर साहब, गाना सिखाने के लिए संगीतज्ञ और चित्रकला के लिए एक कलाकार। हमें सारी शिक्षा घर में ही मिलती। बाबूजी स्वयं ध्यान रखते कि बच्चे ठीक से पढ़ रहे हैं, उन्नति कर रहे हैं आदि। शिक्षा के क्षेत्र में भी जिज्जी मुझसे आगे बढ़ गईं। उनकी तीव्र बुद्धि, पढ़ने में रुचि, सब कुछ जल्दी सीख लिया। रानी साहब नरसिंहगढ़, शिवकुमारी महारानी जिज्जी के ज्ञान और कविता प्रेम से बहुत प्रभावित थीं। जिज्जी से आयु में बड़ी होने पर भी वे जिज्जी को अपनी सहेली मानतीं। वे स्वयं भी कविता करती थीं—कविता की प्रेमी थीं। जब तब अपनी मोटर भेज कर वे जिज्जी को बुलवातीं। माँ हम दोनों को भेज देतीं। जिज्जी और रानी साहब महल के पुस्तकालय में बैठ कर पढ़ती या काव्य चर्चा करतीं और मैं महल के अंदर घूमती रहती। चाँदी के पलँग आदि बहुमूल्य वस्तुएँ देखने में आनंद लेती। कई बार रानी साहब का जिज्जी के लिए सवेरे ही पत्र आ जाता—मैंने रात को कविता लिखी है। कार भेज रही हूँ। जल्दी आ जाओ। जिज्जी अपनी काव्य सखी से मिलने के लिए उत्सुक हो जातीं और मैं महल में घूमने के लिए।

कन्यादान की दादा को आकुल प्रतीक्षा थी। नौ साल की लड़की, रोहिणी का दान! महापुण्य उपार्जन का साधन! दादा ने इस पुण्य को प्राप्त करने के लिए जिज्जी की शादी ठहरा दी। बाबूजी इतनी जल्दी लड़की का ब्याह नहीं करना चाहते थे। वे उच्च शिक्षा को आवश्यक मानते थे। किंतु दादा की आंतरिक इच्छा के प्रतिकूल जाना, उन्हें आघात पहुँचाना उन्हें उचित नहीं लगा। अतः जिज्जी को दसवां वर्ष लगा ही होगा कि उनका विवाह हो गया। दादा ने कन्यादान किया। ग्यारहवाँ वर्ष लगते न-लगते माँ ने उन पर पर्दे का प्रतिबंध लगा दिया। वे घर में ही रहतीं। पढ़ना लिखना, मंदिर जाना, घर का काम करना। जिज्जी की सास थी नहीं, ससुर थे। उनकी भी शीघ्र ही मृत्यु हो गई। जीजाजी स्वरूपनारायण दसवीं कक्षा के विद्यार्थी थे। बाबूजी ने जीजाजी को अपने पास बुला लिया। इंटर करा कर उन्हें लखनऊ के मेडिकल कालेज में बोर्डिंग में रख दिया जहाँ से उन्होंने डाक्टरी में योग्यता प्राप्त की। जिज्जी की शादी करने के साथ ही बाबूजी ने अपनी बड़ी बेटी की मनोवृत्ति पर ध्यान दिया। वह बिलकुल तन्मय थी, अपने ही मनन अध्ययन में लीन! बाबूजी अक्सर कहा करते थे—महादेवी नफासत पसंद, नाजुक मिजाज लड़की है। अपनी लड़की के दिन प्रति दिन के व्यवहार से उन्हें लगने लगा कि इस अल्प आयु में लड़की की शादी करके उन्होंने महान् भूल की और वह इस जीवन को सुगमतापूर्वक नहीं अपना पाएगी। बाबूजी ने अपनी भूल के प्रायश्चित्त स्वरूप, उस समय के मदन में एक महान निर्णय ले लिया। वे अपनी बेटी और दामाद को अलग-अलग रखेंगे ताकि वह पृथकता की खाई एक दूसरे को मनानुकूल जीवन जीने दे। बाबूजी ने क्रास्थवेट बोर्डिंग हाउस में हम दोनों बहनों को भेजने का निश्चय कर लिया। परिवारवालों ने सुना तो बड़ा विरोध किया—क्या बेटी की कमाई खाएँगे?

बाबूजी स्वयं हम लोगों को इलाहाबाद छोड़ने आए। मार्ग एवं स्टेशनों पर अनेक अपंग लोग मिले। मैं सदैव कहा करती थी—बाबूजी मुझमें माँ का रंग आया, मैं काली हूँ। बाबूजी को यह सुनना बुरा लगता था। वे मेरे कहने का प्रतिवाद करते हुए कहते—नहीं, माँ काली नहीं है। देखती नहीं हो दादा रंग का गेहूँ होता है, सफेद और ललछौंह। माँ का ललछौंह रंग है। स्टेशन पर जब लूले, लँगड़े, अंधे, काने लोग मिले तो बाबूजी ने मुझसे कहा—तुम इन सबसे सुंदर हो। ईश्वर को धन्यवाद दो कि तुम्हें अच्छा बनाया है। 'सौ से बुरा तो एक से बेहतर बना लिया।' बाबूजी गम्भीर स्थिति को समझने वाले और पूरे दिन के व्यक्ति थे, जिन्होंने सदैव अपने बच्चों के कल्याण को ध्यान में रखा।

हम लोगों के होस्टल में प्रवेश करने के लिए ही मानो दादा का जिज्जी को दिया हुआ नाम 'महादेवी' प्रतीक्षा कर रहा था। इसने जिज्जी के लिए स्वतंत्र आत्मनिर्भर जीवन का मार्ग उन्मुक्त कर उनके काव्य में उस शाश्वत सत्य का वरण करवा दिया जो उनके जीवन की सार्थकता है।

[एक भेंट-वार्ता के आधार पर—शान्ति जोशी]



जीवन-झाँकी

गंगाप्रसाद पाण्डेय

होली भारतीय त्योहारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण और व्यापक पर्व है। इसे धरती का निजी उत्सव कहना चाहिए। धरती के रूप, रंग, रस, गंध होली में सजीव और सहज ही यौवनित हो उठते हैं। रसाल की मधुमाती मंजरियाँ फागुनी वातावरण में झूम झूम कर विश्व प्राणों में मादकता का संचार करने लगती हैं। मधूक रसभार से धरती पर चू पड़ते हैं। अन्नमयी नवीन फसल आत्म-समर्पण द्वारा मानवीय जीवन साधना में तृप्ति का उपहार लेकर उपस्थित होती है। चतुर्दिक राग रंग और उल्लास की पिचकारियाँ छूटने लगती हैं। धरती और आकाश अबीर गुलाल से अनुरंजित हो उठते हैं।

फाग राग की सरस स्निग्ध तरंगों में सारा जीवन तरंगित होने लगता है—यही तो होली है। सबसे बढ़कर यह कि इसी दिन से हमारा नया सम्वत प्रारम्भ होता है। पौराणिक कथा के रूप में भी होली प्रह्लाद (प्रकृष्ट आह्लाद) की रक्षा और पूतना (जो पूत नहीं है) का अन्तक दिन है। इस प्रकार सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से होली की अपनी महिमा और विशेषता है।

इसी राग रंगमय मंगल मंडित दिन को साहित्य की देवी—महादेवी का जन्म सम्वत् १९६४ में फर्रुखाबाद उत्तर प्रदेश में हुआ। जन्मतिथि की यह रंगमयता और सार्वजनीनता उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में सन्निहित है। जीवन एवं साहित्य के पट में इतने विभिन्न रंगों गुम्फों का सम्मेलन सहज ही नहीं मिलता। रहस्यवादी कवि, यथार्थवादी गद्यकार तथा समन्वयवादी आलोचक होने के साथ-साथ वे अद्वितीय रेखा चित्रकार संस्मरण लेखिका, सामाजिक एवं ललित निबन्धकार, उच्चकोटि की चित्रकर्त्री और परम प्रबुद्ध समाज तथा राष्ट्र सेविका भी हैं। उनके रचनात्मक कार्यों में प्रयाग महिला विद्यापीठ और साहित्यकार संसद के अतिरिक्त अन्य अनेक संस्थायें और पाठशालायें हैं। विशेषता यह है कि इन सभी क्षेत्रों में उनके व्यक्तित्व की अखण्डता सर्वथा अक्षुण्ण है। इस दृष्टि से वे केवल भारत में ही नहीं, विश्व भर में इतनी विराट और व्यापक प्रतिभा की अकेली कलाकार हैं।

आकाश सभी प्रकार के आलोकों और रंगों का आधार है। यदि आपने कभी संध्या का आकाश देखा है तो महादेवी जी की इन पंक्तियों का रंग परखिए—आकाश और कवयित्री का तादात्म्य देखिए—

प्रिय सान्ध्य गगन मेरा जीवन।
यह क्षितिज बना धुंधला विराग
नव अरुण-अरुण मेरा सुहाग
छाया सी काया वीतराग,
सुधि भीने स्वप्न रँगीले घन,
प्रिय सान्ध्य गगन मेरा जीवन।

महादेवी जी माँ-बाप की पहली संतान हैं। रूढ़िग्रस्त भारतीय समाज में आज भी, पर आज से पचास वर्ष पहले तो निश्चित रूप से प्रथम कन्या-जन्म शुभ या सुखद नहीं माना जाता था। महादेवी जी ने स्वयं इसका उल्लेख किया है—"जैसे ही दबे स्वर से लक्ष्मी के आगमन का समाचार दिया गया वैसे ही घर के एक कोने से दूसरे तक एक दरिद्र निराशा व्याप्त हो गई। बड़ी-बूढ़ियाँ संकेत से मूक गाने वालियों को जाने के लिये कह देतीं और बड़े-बूढ़े इशारे से नीरव बाजे वालों को विदा देते—यदि ऐसे अतिथि का भार उठाना परिवार की शक्ति से बाहर होता, तो उसे बैरंग लौटा देने के उपाय भी सहज थे।" सौभाग्य से इनका जन्म बड़ी प्रतीक्षा और मनौती के पश्चात हुआ। इनके बाबा ने इसे अपनी कुल-देवी दुर्गा का विशेष अनुग्रह समझा और आदर प्रदर्शित करने के लिये नाम रखा—महादेवी।

सायनकार की यह उक्ति—सौ सौ पुत्रों से भी अधिक जिनकी पुत्रियाँ पूतशीला वास्तव में राजा जनक की पुत्रियों के लिये जितनी सार्थक है, उतनी ही श्री गोविन्द प्रसाद की पुत्री महादेवी के लिये भी।

महादेवी जी का बाल्य करुणा-कलित-अश्रुमिलन है। पैदा होते ही रोते तो सब बच्चे हैं पर इनको रोने की अद्भुत आदत। माँ—हेमरानी देवी आस्तिक स्वभाव की भारतीय नारी होने के कारण पति का खिलाने पिलाने का कार्य नौकरों पर न छोड़ कर स्वयं करना चाहती थीं और महादेवी जी इस बीच रो रोकर कोलाहल मचा देती थीं। माँ ने विवशता में परम्परा प्रचलित अफीम का सहज सम्बल ग्रहण किया। अफीम मिलाया और झूले पर पड़े पलँगे पर डाल दिया। वे अपनी दैनिकी में व्यस्त हो गईं और बालिका ने कलकत्ता-लन्दन की सैर की।

अफीम-सेवन से हानि जो भी हुई हो, पर प्रत्यक्ष लाभ यह हुआ कि अन्य शिशुओं की अपेक्षा इनका विकास शीघ्र हुआ। तीन वर्ष की अवस्था में ही माँ के पाठ से सार धुन लेने में आप निपुण हो गईं। वर्णमाला ज्ञान के साथ ही भाई-बहन को सिखाने की कला का प्रदर्शन करने लगीं।

पाँच वर्ष की होते-होते आप को भोपाल तथा इन्दौर की यात्रा भी करनी पड़ी, जहाँ 'अंग्रेजी व चर्मचित्र' का ज्ञान इन्हें मिला। छोटे भाई की स्पर्धा में साम-दाम-दण्ड-भेद के द्वारा राजा को आप किस तरह केवल अपने ही लिये राजा कहने को बाध्य कर देती थीं, इसकी भी एक रोचक कहानी है। अवस्था की प्रगति के साथ-साथ जीवन विस्तार

की छाया में यह कला-कुशलता घर की सीमा से निकल कर बगीचे के फूलों और पडोसियो के घर तक पहुँच गयी। रसाल और फूलों का यह आकर्षण कलात्मक रुचि का प्रतीक माना जाय तो राजा कहलाने का हठ पुरुष के साथ समानाधिकार का बीजारोपण। इन्दौर में पूर्णत व्यवस्थित होने पर मा (जिज्जी) ने चाहा कि बेटी को कुछ समय खिलौनों में उलझा रखें, कुछ समय गृह-कार्य की शिक्षा दें और यदि यह सब न हो सके तो पाटी पकडा कर स्कूल ही भेज दें। महादेवी जी इन चक्करों में नहीं पडना चाहती थीं। उनको तो फूल, तितली, हरी दूब और पन्ने या दीवाल पर कुछ उरेहने के लिये कोयला और सिन्दूर के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए। माँ-बाप के लिये एक परेशानी। छोटी बहन और भाई की ओर संकेत करते हुये जिज्जी ने कहा—'खेलना छोटों का काम है, बडों का पढना या घर का काम करना।' इन्होंने पढना पसन्द किया तो आश्चर्य नहीं।

आर्य-समाजी संस्कारों के साथ आप को मिशन स्कूल में भरती कर दिया गया। घर में हिन्दी, उर्दू, चित्रकला और संगीत की पढाई का प्रबंध हो गया। जिज्जी ने किंचित डाँटकर कहा—अब मास्टरों से छुट्टी लिये बिना घर से बाहर मत जाना। पढोगी नहीं तो घर में चुपचाप बैठी तो रहोगी।

पढाई प्रारम्भ के प्रथम दिन ही आप थोडी देर तक अध्यापक के पास बैठी रहीं और फिर छुट्टी की माँग पेश की। आवश्यकता पूछने पर उत्तर दिया—'फूल तोड लाऊँ नहीं तो माली तोडकर बाबू (पिता जी) के गुलदस्ते में लगा देगा, जहाँ वे सूख जाते हैं।' 'तो क्या तुम्हारे तोडने से नहीं सूखते ?' 'सूखते तो हैं पर भगवान् जी पर चढने के बाद। फिर जिज्जी उन्हें नदी भेजवा देती हैं। माली उनको कूडे में फेंक देता है। और बाबू बीनने भी नहीं देते।' प्रश्नोत्तर से पंडित जी इतने प्रसन्न हुये कि उन्होंने तुरंत छुट्टी दे दी। धीरे-धीरे पंडित जी को ज्ञात हुआ कि बालिका केवल बातचीत में ही नहीं पढने में भी प्रवीण है। लडकियाँ और हो ही क्या सकती हैं लडाकू या पढाकू। महादेवी जी ने दोनों रूपों को अपनाया है। लडाकू रूप उनके विद्रोह और नारी विषयक निबन्धों में मुखरित है और उनका पढाकू रूप तो जग जाहिर है ही। जो भी हो, बचपन में पढाई की अपेक्षा आपको इधर-उधर ऊधम मचाना ही अधिक प्रिय था।

रामा नामक रेखाचित्र में महादेवी जी ने अपने बचपन की अनेक मनोरंजक घटनाओं का अंकन किया है जिनसे उनके स्वभाव और उनकी प्रबुद्धता का पता चलता है। दशहरे के मेले में खिलौने खरीदने के लिये रामा ने एक को कंधे पर बिठाया और दूसरे को गोद में ले लिया। महादेवी जी को उँगली पकडाते हुए बार-बार कहा—'उँगरिया जिन छोडिया राजा भइया।' सिर हिलाते हुये स्वीकृति देते-देते ही इन्होंने उँगली छोडकर मेला देखने का निश्चय कर लिया। भटकते भटकते और दबने से बचते-बचते जब इन्हें भूख लगी तब रामा का स्मरण अनिवार्य हो उठा। एक मिठाई की दूकान पर खडे होकर अपनी उद्विग्नता को छिपाते हुये इन्होंने सहज भाव से प्रश्न किया—'क्या तुमने रामा को देखा है ?'

वह सो गया है।' हलवाई ने वात्सल्य मुग्ध होकर पूछा—'कैसा है तुम्हारा रामा?' इन्होंने आँखें दबा कर संताप के साथ कहा—'बहुत अच्छा है'। हलवाई इस उत्तर से क्या समझता? अन्तत उसने आग्रह के साथ विश्राम करने के लिये वहीं बिठा लिया। 'मैं हार तो मानना नहीं चाहती थी, परन्तु पाँव थक चुके थे और मिठाइयों से सजे थालों में कुछ कम निमन्त्रण नहीं था। इसी से दूकान के एक कोने में बिछे टाट पर सम्मान्य अतिथि की मुद्रा में बैठकर मैं बूढ़े से मिठाई रूपी अर्घ्य का स्वीकार करते हुये उसे अपनी महान यात्रा की कथा सुनाने लगी।' सन्ध्या समय जब सबसे पूछते-पूछते बड़ी कठिनाई से रामा उस दूकान के सामने पहुँचा तब इन्होंने विजय-गर्व से फूलकर कहा—'तुम इतने बड़े होकर भी खो जाते हो रामा।'

एक बार जब आप केवल सात वर्ष की थीं, पड़ोस में किसी आवारा कुत्ती ने बच्चे दिये। जाड़े की रात का सन्नाटा और ठंडी हवा के सन-सन झोंकों के साथ पिल्लों की कूँ कूँ की ध्वनि करुणा का ऐसा संचार करने लगी जो महादेवी जी के कोमल हृदय के लिये असह्य हो उठी। बेचैनी के साथ आपने कहा—'बड़ा जाड़ा है पिल्ले जड़ा रहे हैं। मैं उनको उठा लाती हूँ, सवेरे वहीं रख दूँगी।' 'चलो, चलो, मेरी अच्छी जिज्जी।' अस्वीकृति की सूचना पाते ही आप जार जार से रोने लगीं। सारा घर जग गया और अन्त में पिल्ले घर लाये गये! उनके इस स्वभाव में आज भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। ऐसे अतिथि जीव-जन्तुओं से उनका घर अब भी प्राय भरा रहता है।

इस करुणाजनित स्वभाव के कारण जीवन और जगत की विषम करुण स्थिति में उनके हृदय का स्पन्दन सहज नहीं? सामने आई हुई विषमता को वे अपनी सहज स्निग्धता से सरस नहीं कर देना चाहतीं? ऐसी कौन सी पाषाणी कठोरता है जो उनकी मूलाधार करुणा के स्पर्श से काँप नहीं उठती? सत्य और समूह की रक्षा के लिये विद्रोह की विषम ज्वाला को इन्होंने अपनी त्यागमयी तपस्या की आँच नहीं दी यह कह सकना कठिन है।

उसी अवस्था में पूजा-आरती के समय माँ से सुने हुये मीरा, तुलसी आदि के तथा उनके स्वरचित पदों के सहारे पर मुग्ध होकर इन्होंने पद रचना प्रारम्भ कर दी थी।

काव्य की प्रथम शिशु रचना का प्रारम्भ सात वर्ष की अवस्था में इस प्रकार हुआ था—'आओ प्यारे तारे आओ, मेरे आँगन में बिछ जाओ'। किन्तु इसके बाद की लिखी पूर्ण रचना समस्यापूर्ति ही है—

आगम है रितु सावन को, बरसौ न बदरी नभ की गलियान में
मीरा सुमन बनाम करो, मुस्कान नई बगरी कलियान में,
भौंर पुनी बिरदावलियाँ अब गुंजित हैं खग औ अलियान में,
सागर के हित कंज-करा मुसकाहट ओर खरी अँखियान में।

प्रयाग पढ़ने आने के पहले से ही आप 'सरस्वती' पत्रिका से परिचित हो चुकी

थी। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की कविताएं भी देख चुकी थीं। बोलने की भाषा में कविता लिखने की सुविधा इन्हें आकर्षित करने लगी थी। वस्तुतः इन्होंने 'मेघ बिना जल वृष्टि भई है' को खड़ी बोली में इस प्रकार रूपान्तरित कर दिया—

हाथी न अपनी सूंड में यदि नीर भर लाता अहो,
तो किस तरह बादल बिना जल-वृष्टि हो सकती कहो ?

'अहो' और 'कहो' देखकर ब्रजभाषा प्रेमी आपके अध्यापक पंडित जी ने कहा—'अरे ये यहां भी पहुंच गये' ? पर आपने इसे अनसुना कर दिया और ब्रजभाषा छोड़कर खड़ी बोली को अपना लिया।

खड़ी बोली की प्रथम पूर्ण रचना जो आपके आठवें वर्ष में लिखी गई थी और जिसका शीर्षक 'दिया' है, यह है—

धूलि के जिन लघु कणों में है न आभा प्राण,
तू हमारी ही तरह उनसे हुआ वपुमान !
आग कर देती जिसे पल में जलाकर क्षार,
है बनी उस तूल से वर्ती नई सुकुमार।
तेल में भी है न आभा का कहीं आभास
मिल गये सब तब दिया तू ने असीम प्रकाश।
धूलि से निर्मित हुआ है यह शरीर ललाम,
और जीवन-वर्ति भी प्रभु से मिली अभिराम।
प्रेम का ही तेल भर जो हम बनें निःशोक,
तो नया फैले जगत के तिमिर में आलोक !

इसी समय एक ऐसी घटना घटी जिसने महादेवी जी को इतना प्रभावित किया कि वे उस घटना से कभी मुक्त नहीं हो सकीं। नौकर ने पत्नी को इतना पीटा कि वह लहू-लुहान होकर रोती हुई जिज्जी के पास दौड़ आई अन्यथा वह उसे मार ही डालता। गर्भिणी स्त्री के लिये काम-काज भारी बोझ और ऊपर से ऐसी मार ! जिज्जी ने सहानुभूति के साथ उसकी गाथा सुनी और नौकर को डांटा फटकारा। सब शान्त हो जाने पर महादेवी जी ने कहा—'हाय कितना पीटा है ! यह भी क्यों नहीं पीटती ?' जिज्जी ने सहज भाव से कह दिया—'आदमी मारे भी तो औरत कैसे हाथ उठा सकती है?' 'और अगर तुमको बाबू इसी तरह मारें तो ?' 'ना, ना, बाबू ऐसा नहीं कर सकते ! आर्यसमाजी होकर भी मेरे साथ सत्यनारायण की कथा सुनते हैं, बड़े अच्छे आदमी हैं। कोई-कोई आदमी दुष्ट होते हैं।' 'तो फिर इसने दुष्ट के साथ शादी क्यों की ?' 'पगली शादी तो घर के बड़े-बूढ़े करते हैं, यह बेचारी क्या करे ? अब कोई उपाय नहीं।'

इसके बाद थोड़ी देर तक दोनों एक-दूसरे को देखती रहीं। फिर जिज्जी ने जाने क्या दीर्घ साँस ली और महादेवी जैसे अपने भीतर डूब गईं।

वय की सामर्थ्य से कहीं अधिक अपने सातवें वर्ष से लेकर नवें वर्ष तक के बीच में हिन्दी, उर्दू, संगीत तथा चित्रकला का अप्रत्याशित ज्ञान प्राप्त कर लिया था। ब्रजभाषा के पद समस्यापूर्ति के साथ खड़ी बोली में भी कविताएँ लिखने लगी थीं। इस संस्कार की प्रखरता के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? जिज्जी और बाबूजी ने भी बेटी की असाधारण प्रतिभा और बुद्धि की प्रखरता देखकर प्रोत्साहन देने में कभी कोई चूक नहीं की। आजीवन शिक्षा-संस्थाओं से सम्बद्ध रहने के कारण बाबू जी बच्चों की प्रतिभा पहचानने में पारंगत थे। पढ़ाई-लिखाई में पिता जी का प्रबुद्ध निरीक्षण-परीक्षण और उत्साह-वर्द्धन तथा गृह-कार्य में माताजी की शिक्षा-दीक्षा ने मिलकर महादेवी जी को दोनों क्षेत्रों में दक्ष कर दिया था। महादेवी जी ने इसका उल्लेख भी किया है— 'एक ओर साधनापूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ और दार्शनिक पिता ने अपने-अपने संस्कार देकर मेरे जीवन का जैसा विकास किया उसमें भावुकता के कठोर धरातल पर साधना एवं व्यापक दार्शनिकता पर आस्तिकता एक सक्रिय किन्तु किसी वर्ग या सम्प्रदाय में न बँधने वाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी।'

सम्भवतः इसीलिये एक सजग यथार्थवादी की तरह सोचने-समझने और आस्थावान आदर्शवादी की तरह काम करने की उनकी अपनी एक अलग प्रणाली है। समन्वय और सामञ्जस्य उनके जीवन के मूलाधार हैं। अनेक आश्चर्यजनक विलक्षणताओं का सहज समाहार, विविध विजातीय वर्गों से समान सम्बन्ध, विभिन्न मत और विचार के व्यक्तियों से एकरस सहानुभूति, परस्पर विरोधी नाना प्रकार के कार्यों को कर सकने की अद्भुत क्षमता, साहित्य की हाट और चिनगारियों का एक साथ मोल लगाते चलने की। अनन्तर पुनः आदि उनकी समन्वयशीलता के साक्षी हैं। काव्य में गम्भीर रहस्यवादी होकर भी जीवन में इतनी सहज सरल तथा परानुभूतिशील, स्पष्ट और निश्छल बने रहने का रहस्य भी यही है।

अभी तक छोटे से खिलौने विशेष के लिये वे बच्चों के साथ कलह-कोलाहल तक भी उतर आती हैं। मुन्नी का हाथी छीन लेना चाहती हैं, मुन्नी की गुड़िया छिपा लेने की ताक में रहती हैं। मध्यवित्त परिवार के बच्चे खिलौनों के विषय में इनके भूखे बने रहते हैं। खिलौनों का इतना बड़ा संग्रह इनके पास है कि शायद ही किसी और के पास हो। उनकी इस पंक्ति पर ध्यान दीजिए—'यह खिलौने और यह उर प्रिय नयी असमानता है'।

'हास में आँसू रुदन में हास' की उक्ति में भी महादेवी के साथ आदरणी यात्रा रहती है। मैंने देखा है कि निराला जी की मानसिक अवस्था से चिन्तित होकर आँसुओं के साथ

उन्हें विदा देते समय भी वे गुप्त जी का स्वागत मुक्त हास के साथ करने में समर्थ हैं। पलकों में आँसू और ओठों में हास साथ ही सँजो रखने में वे अद्वितीय हैं।

नवाँ वर्ष पूरा होने को हुआ कि बाबा ने गुड़िया का ब्याह रचने की ठान ली। पके आम—बूढ़े होने के कारण वे अपनी महामहिम महादेवी का विवाह अपनी आँखों की छाया में ही कर देना चाहते थे। घर में उनके विरुद्ध कुछ कहने का किसी में साहस भी नहीं था। प्राचीन परिपाटी यही थी। बाबा की हठ, उन्होंने न केवल ब्याह वरन् आगामी कई वर्षों तक साइत न बनने के कारण उसी समय एक सप्ताह के लिए बालिका की विदा भी कर दी। रोती चिल्लाती इस शिशु की कातरवाणी कितनी हृदय विदारक रही होगी, यह सहज ही अनुमेय है।

ससुराल (बरेली के पास नवाबगंज नामक कस्बा) पहुँचकर महादेवी जी ने जो उत्पात मचाया उसे ससुराल वाले ही जानते हैं। न खाना, न पीना, न बोलना, न सुनना—केवल रोना, रोना, बस रोना। आँखें सूज गईं, ज्वर आ गया और कै का ताँता बँध गया। नयी बालिका बहू के स्वागत-समारोह का उत्साह पीछे पड़ गया और घर में एक आतंक छा गया। फलतः श्वसुर महोदय दूसरे दिन ही इन्हें वापस लौटा गये। श्वसुर लड़कियों का स्कूली पढ़ाई के नितान्त विरोधी थे, इसलिये पढ़ाई का क्रम टूट गया। इसे विधि का विधान ही कहना चाहिये कि साल भर के बाद ही श्वसुर का देहान्त हो गया।

महादेवी जी के लिये अब केवल एक ही प्रशस्त पथ था—पढ़ाई का। विद्यानुरागी बाबू जी ने भी यही उचित समझा और आगे पढ़ने के लिये इन्हें क्रास्थवेट कालेज, प्रयाग में भरती कर दिया। फिर क्या था धड़ल्ले से पढ़ाई और काव्य रचना चल पड़ी। मिडिल की परीक्षा आपने प्रथम श्रेणी में पास की और प्रान्त भर में प्रथम स्थान पाने के कारण राजकीय छात्रवृत्ति भी प्राप्त की। उसी समय सौ छन्दों का एक करुण खण्डकाव्य भी लिखा।

महादेवी जी ने उस समय की साहित्यिक मनोभूमि का उल्लेख किया है—'जब मैं अपनी विचित्र कृतियों तथा तूलिका और रंगों को छोड़कर विधिवत अध्ययन के लिये बाहर आयी, तब सामाजिक जागृति के साथ राष्ट्रीय जागृति की किरणें फैलने लगी थीं अतः उनसे प्रभावित होकर मैंने भी 'शृंगारमयी अनुरागमयी भारत जननी भारत माता', 'तेरी उतारूँ आरती माँ भारती' आदि जिन रचनाओं की सृष्टि की थी वे विद्यालय के वातावरण में ही खो जाने के लिये लिखी गई थीं। उनकी समाप्ति के साथ ही मेरी कविता का शैशव भी समाप्त हो गया। उस समय की 'अबला', 'विधवा' आदि रचनायें 'आर्य महिला' एवं 'महिला जगत' पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुई थीं।

इसके बाद महादेवी जी की काव्य प्रवृत्ति उनकी मूल भाव धारा की ओर उन्मुख हो गई, जिसमें व्यष्टिगत दुख समष्टिगत गम्भीर वेदना का रूप ग्रहण करने लगा और प्रत्यक्ष का स्थूल रूप एक सूक्ष्म चेतना का आभास देने लगा। कहना नहीं होगा इस दिशा में मेरे मन को वही विश्राम मिला जो पक्षि-शावक को कई बार गिर-उठकर अपने पंखों के

सँभाल लेने पर मिलता होगा'। उस भाव की प्रथम रचना चाँद के प्रथम अंक में प्रकाशित हुई। तब से रचना क्रम अबाध रूप से चलता रहा और बहुत बाद में प्रकाशित 'नीहार' का अधिकांश उनके मैट्रिक होने के पहले ही लिखा जा चुका था।

मिडिल, दसवाँ, ग्यारहवाँ दर्जा पास करते-करते कवि-सम्मेलनों, वाद विवाद प्रतियोगिताओं में प्राप्त तमगों और पुरस्कारों से छात्रावास का कमरा भर गया। उस समय की प्रचलित प्रसिद्ध पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित होने लगीं और चारों ओर से कविताओं की माँग बढ़ने लगी तथा काव्य मर्मज्ञों का ध्यान इस नवीन प्राञ्जल प्रतिभा की ओर उत्सुकता से आकर्षित होने लगा। आशय यह कि मिडिल से इन्टर तक की विद्यार्थिनी के रूप में ही आपको एक आश्चर्यजनक ख्याति मिल चुकी थी। सन् '२३, '२४ में श्री इलाचन्द्र जोशी को अपने तत्कालीन चाँद के सहकारी संपादक के रूप में महादेवी वर्मा के नाम से प्रकाशन के लिये आयी हुई कविता को देख कर आश्चर्य के साथ जो संदेह हुआ था उसका वर्णन उन्होंने 'संगम' के महादेवी अंक में अपने लेख 'जीवन विजयिनी महादेवी' में रोचकता और विशदता के साथ किया है।

अपने कालेज जीवन में कालेज के बच्चों को नाटक खेलने के लिये आपने एक काव्य रूपक की भी रचना की थी, जिसमें फूल, भ्रमर, तितली और वायु को पात्र बनाया गया था। न जाने क्यों आगे आपने इस विधा को प्रश्रय नहीं दिया? कालेज की सभी छात्राओं से आपका आत्मीय सम्बन्ध और उनके सुख-दुख में सर्वाधिक लगाव सहेलियों की चर्चा का विषय बना रहा। छात्राएँ और अध्यापिकाएँ सभी समान रूप से आपको स्नेह और सम्मान देती थीं। श्री सुभद्राकुमारी चौहान से प्रगाढ़ मैत्री की नींव भी कालेज में ही पड़ी। सुमित्रानन्दन पंत जी को हिन्दू बोर्डिंग हाउस के कवि-सम्मेलन में उसी समय इन्होंने पहली बार देखा। उनके बड़े बाल और वेशभूषा के कारण उन्हें लड़की समझकर पुरुषों के बीच बैठने की ढिठाई पर मन-ही-मन अप्रसन्न भी हुईं।

बी० ए० पास होते ही गौने का प्रश्न उपस्थित हुआ। इस बार उन्होंने साफ शब्दों में दृढ़तापूर्वक, किन्तु सहज भाव से जिज्जी को बता दिया कि वे विवाह को किसी भी स्थिति में स्वीकार करने को तैयार नहीं और तब गौने की चर्चा ही व्यर्थ है। जिज्जी का यह निश्चय सुन कर अत्यंत क्षोभ हुई और उन्होंने बहुत तरह से समझाना भी चाहा पर महादेवी जी अपने निश्चय पर अटल रहीं। बाबू जी को भी बहुत दुख हुआ और उन्होंने इन्हें एक लम्बा पत्र लिखा जिसमें अबोध बालिका के प्रति विवाह रूप में किये गये अन्याय की मुक्त कंठ से क्षमा माँगते हुये यह भी लिखा कि यदि दूसरा विवाह करने की इच्छा हो तो वे इनके साथ धर्म परिवर्तन करने को भी तैयार हैं। इन्होंने अपने उत्तर में स्पष्ट कर दिया कि दूसरे विवाह की बात नहीं वे विवाह करना ही नहीं चाहतीं। यदि पिछले कृत्य की ग्लानि छोड़ कर उनके वर्तमान निश्चय को स्वीकार कर लिया जाय तो दोनों ही दुख पिछले पापों से मुक्त हो जायेंगे। बाबू जी ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। इसी समय से इस प्रसंग का अन्त हो गया।

उन दिनों भारतीय नारी के लिये विवाह को इस प्रकार अस्वीकार कर देना कितना कठिन और विस्मयकारी था, कहने की बात नहीं। बचपन से ही महादेवी जी का यह स्वभाव रहा है कि उन्होंने जो अपने जीवन विकास के लिये उचित समझा सो किया, हठ और विद्रोह के साथ किया। संसार का कोई भी प्रलोभन या भय उनमें विमुख उन्हें नहीं कर सका।

विवाहित जीवन अस्वीकार करने की बात को लेकर कतिपय फ्रायड-भक्तों और मनस्विनियों ने, जिनका संयम और साधना पर विश्वास नहीं है, महादेवी जी के प्रति मनमाने अनुमान आरोपित करते हुये उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में इसकी प्रतिक्रिया का प्रतिफलन देखने की हास्यास्पद चेष्टा की है। वैवाहिक जीवन अस्वीकार करने के मूल में भारतीय नारी की युग-युगों से चली आती हुई वह दयनीय दशा जिसका उल्लेख अपने सामाजिक निबंधों में महादेवी जी ने बारबार आक्रोश और क्षोभपूर्ण शब्दों में किया है तथा उनकी सहज वैराग्य भावना है। बौद्ध भिक्षुणी बनने की इच्छा से भी इसका समर्थन होता है। इसके अतिरिक्त पुरुष निरपेक्ष नारी-व्यक्तित्व की स्थापना का उनका जीवन-व्यापी उद्देश्य भी इसमें सक्रिय रहा हो तो आश्चर्य नहीं। अनुमान से अधिक महत्व स्वयं उनके स्पष्ट कथन को न देकर हम अपने को ही लांछित करते हैं। उनके इस कथन पर ध्यान दीजिए —'मेरे जीवन ने वही ग्रहण किया जो उसके अनुकूल था। कविता सब से बड़ा परिग्रह है, क्यों कि वह विश्व मात्र के प्रति स्नेह की स्वीकृति है।"

परिग्रही जीवन को अस्वीकार करके उन्होंने अपना कोई सीमित परिवार नहीं बनाया, पर उनका जैसा विशाल परिवार-पोषण सब के वश की बात नहीं। गाय, हिरण, कुत्ते बिल्लियाँ गिलहरी, खरगोश, मोर कबूतर तो उनके चिर संगी हैं ही लता-पादप पुष्प आदि तक उनकी पारिवारिक ममता के समान अधिकारी हैं। आगंतुक और यदि वह अतिथि हो तो उसके स्वागत की उनकी तन्मयता देखने लायक होती है। विशाल साहित्यिक परिवार में से प्रयाग आने वाले साहित्यिकों के लिये तो उनका निवास घर ही सा है, पर असाहित्यिकों के लिये भी उनका द्वार मुक्त रहता है। गुप्त जी ने ठीक ही कहा था— 'मेरी प्रयाग-यात्रा केवल संगम-स्नान से पूरी नहीं होती, उसको सर्वथा सार्थक बनाने के लिये मुझे सरस्वती (महादेवी) के दर्शनों के लिये प्रयाग महिला विद्यापीठ जाना पड़ता है। संगम में कुछ फूल अक्षत भी चढ़ाना पड़ता है पर सरस्वती के मंदिर में कुछ प्रसाद मिलता है। समस्त हिन्दी के लिये उन्हीं का प्रसाद है।"

प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम० ए० करने के पश्चात उन्होंने अपनी रुचि के अनुकूल कार्य समझ कर प्रयाग महिला विद्यापीठ के प्रधानाचार्या का भार ग्रहण किया और 'चाँद' का निःशुल्क संपादन भी करने लगीं। जब तक आपकी 'नीहार' और 'रश्मि' काव्य-कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी थीं।

यों तो कविताओं के साथ-साथ बचपन से ही आपने गद्य लिखना भी प्रारम्भ कर

दिया था और 'पर्दा प्रथा' पर लिखित निबन्धों की प्रतियोगिता में उत्तर प्रदेश शिक्षा विभाग से आपको मिडिल कक्षा में ही पुरस्कार भी मिल चुका था। 'भारतीय नारी' नामक नाटक भी क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज और विद्यापीठ में अभिनीत हो चुका था, कतिपय संस्मरण भी लिखे जा चुके थे, परन्तु 'चाँद' के संपादकीय के रूप में लिखा गद्य अपना एक अलग महत्त्व रखता है। उपेक्षित प्राणियों में नारी-वर्ग का स्थान शीर्षस्थ है, इसमें हम भारतीय अन भिज्ञ नहीं। महादेवी जी के लिये यह स्वाभाविक था कि इस वर्ग के प्रति किये गये अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध वे आवाज उठातीं। इन निबन्धों में उन्होंने भारतीय नारी की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का बहुत गहराई के साथ एक समाज शास्त्री की भाँति विश्लेषण विवेचन किया है। आगे चल कर किंचित परिवर्तन और परिवर्द्धन के साथ-साथ ये निबन्ध 'शृंखला की कड़ियाँ' नामक कृति में संग्रहीत हुये हैं।

महादेवी जी कवि रूप में जितनी परिचित और प्रसिद्ध हैं उतनी गद्यकार के रूप में नहीं, यद्यपि उनका गद्य भी उतना ही महत्वपूर्ण और प्रभावशाली है। काव्य की तरह उनकी गद्य रचनायें भी गाम्भीर्य, प्रौढ़ता प्राञ्जलता और उनके व्यक्तित्व की महाप्राणता से समन्वित और प्रकृष्ट और परिष्कृत हैं। अपने नारी विषयक निबन्धों में महादेवी जी ने जिस क्रान्तिकारी दृष्टिकोण का परिचय दिया है, वह बड़े-से-बड़े समाज-सुधारक में भी विरल है। सामान्य नारी की स्थिति पर विचार करते हुये उन्होंने विधवाओं, कन्याओं और अवैध सन्तानों की समस्याओं पर भी अपने साहसी और निर्भीक विचार व्यक्त किये हैं। उनके सुझाव और निष्कर्ष इतने तटस्थ और सामाजिक चेतना से परिपुष्ट हैं जो नर-नारी दोनों वर्गों के लिये उपयोगी और व्यावहारिक हैं। यह ठीक है कि नारी की करुण स्थिति देख कर उनका हृदय विह्वल हो गया और उनका विद्रोह सक्रिय हो उठा, परन्तु उन्होंने कभी निष्पक्षता छोड़कर सन्तुलन नहीं खोया—"अन्याय के प्रति मैं स्वभाव से असहिष्णु हूँ, अतः इन निबन्धों में उग्रता की गंध स्वाभाविक है, परन्तु ध्वंस के लिये ध्वंस के सिद्धान्त में मेरा कभी विश्वास नहीं रहा।" वस्तुतः नारी के प्रति उनकी संवेदनशील करुणा जीवन के प्रगतिशील दर्शन और कल्याण पर आधारित है। ऐसी स्थिति में बलिपशु के लिये करुणा और बलि करने वाले के प्रति आक्रोश स्वाभाविक ही कहा जायगा।

अनेक व्यक्तियों का विचार है कि यदि कन्याओं को स्वावलम्बी बना देंगे तो वे विवाह ही न करेंगी, जिससे दुराचार भी बढ़ेगा और गृहस्थ-धर्म में भी अराजकता उत्पन्न हो जायगी। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि स्वाभाविक रूप से विवाह में किसी व्यक्ति के साहचर्य की इच्छा प्रधान होना चाहिए आर्थिक कठिनाइयों की विवशता नहीं।'

उन्होंने घर के शासित के प्रति 'आधुनिकाओं' के विद्रोह को भी स्वीकार नहीं किया और न घर की दीवारों तक ही सीमित रहने वाली परम्परा को ही माना। उनके मत से नारी का कार्यक्षेत्र घर भी है और घर के बाहर भी—'समाज को बिना न किसी भिन्न स्त्री के अपकार का सहानुभूति के साथ समझकर उसे ऐसा उपचार देना होगा, जिस

पाकर वह अपने-आपको उपेक्षित न माने और जो उसके मातृत्व के गौरव को अक्षुण्ण रखते हुये भी उसे नवीन युग की सन्देशवाहिका बना सकने में समर्थ हो।" उनका निष्कर्ष इन शब्दों में स्पष्ट है—"स्त्री में माँ का रूप ही सत्य, वात्सल्य ही शिव और ममता ही सुन्दर है। जब वह इन विशेषताओं के साथ पुरुष के जीवन में प्रतिष्ठित होती है तब उसका रिक्त स्थान भर देना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है।"

गद्य लिखने की प्रेरणा का स्पष्टीकरण करते हुये महादेवी जी ने लिखा है—'मेरे सम्पूर्ण मानसिक विकास में उस बुद्धि प्रसूत चिंतन का भी विशेष महत्व है जो जीवन की बाह्य व्यवस्थाओं के अध्ययन में गति पाता रहा है। अनेक सामाजिक रूढ़ियों में दबे हुये निर्जीव संस्कारों का भार ढोते हुये और विविध विषमताओं में साँस लेने का भी अवकाश न पाते हुये जीवन के ज्ञान ने मेरे भाव-जगत की वेदना को गहराई और जीवन को क्रिया दी है। उनके बौद्धिक निरूपण के लिये मैंने गद्य को स्वीकार किया था।' उनके सामाजिक निबन्धों में उनका यह संकल्प अत्यंत ओज के साथ सार्थक और चरितार्थ हुआ है, इसमें सन्देह नहीं।

नीरजा उनके काव्य-संचरण का तीसरा सोपान है। इसमें अनुभूति के उत्कर्ष और कलात्मक संवादमयता के साथ हिन्दी गीत काव्य अपने चरम विकास का स्पर्श पा लेता है। गीतों की दृष्टि से नीरजा हिन्दी की श्रेष्ठतम रचना है। छायावाद के दुर्वासा आलोचक आचार्य शुक्ल ने भी इनके गीतों की सफलता को अनन्य माना है।

चौथी कृति सान्ध्यगीत में आत्मा-परमात्मा तथा प्रकृति और विश्व के बीच रागात्मक सम्बन्ध का आकलन करते हुये महादेवी जी का काव्य समात्म भाव के उच्चतम धरातल पर प्रतिष्ठित हो जाता है। रहस्यवादी काव्य की यही चरम सफलता है। उन्होंने स्वयं भी लिखा है नीरजा और सान्ध्यगान मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिसमें अनायास ही मेरा हृदय सुख-दुख में सामञ्जस्य का अनुभव करने लगा।

सान्ध्यगीत के प्रकाशन के साथ रचयित्री का चित्रकर्त्री रूप भी सामने आया। इस प्रकार सान्ध्यगीत' काव्य, संगीत और चित्र के समन्वित स्वरूप से आलोकित है।

उनकी पाँचवी काव्य-कृति 'दीपशिखा' को काव्यमय चित्र तथा चित्रमय काव्य अथवा चित्रगीत की संज्ञा दी जा सकती है। प्रत्येक गीत की पृष्ठभूमि के रूप में एक चित्र अंकित है जो काव्यात्मक की चारुता बढ़ाने में सहज ही समर्थ है। कला और भाव दोनों दृष्टियों से दीपशिखा अत्यंत प्रौढ़ और अपने ढंग की अकेली काव्य कृति है। 'दीपशिखा' देखने के पश्चात ही निराला जी ने इनके विषय में लिखा था—

हिन्दी के विशाल मन्दिर की वीणा-वाणी,
स्फूर्ति चेतना रचना की प्रतिमा कल्याणी।